ख़ुदा से ख़ुद तक

नेहा शरद

H
819.101
N 313 K

नेहा ग़ज़ल नहीं कहती, लेकिन उनकी नयी-नयी शायरी जेह्न और दिल को छूनेवाली ऐसी अजनबीयत है जो किसी ऑयडियल की तरह ख़ूबसूरत है। सिर्फ़ उर्दू के वसीले से कुछ अच्छे-बुरे लिखनेवाले को ज़ेह्न में बसाकर मुतमईन रहना उर्दू से मुहब्बत नहीं है। ये मसला यहाँ पैदा हुआ कि नेहा शरद की शेरी दुनिया में मैं कई दिनों से भटक रहा हूँ। हर दिन ये सोचता हूँ कि आज रात उन पर कुछ लिखूँगा, लेकिन रात ग़ारी हो जाती है। अपने पसंददीदा शायर या शायरा पर लिखना जितना आसान लगता है, उतना ही मुश्किल होता है। अदब और शायरी की जिन औरतों को मैंने आधा या अधूरा, अच्छा या बुरा जाना है, वे कुछ दूर साथ चलकर अलग हो जाती हैं। उन पर बहुत आसानी से लिख सकता हूँ। उनकी पॉएटिक पर्सनालिटी किताब की तरह होती है। जब चाहा पढ़ लिया।

नेहा का मामला बिलकुल अलग हो गया है। उनको देखा है। उनसे बातें की हैं। वो कहेगी कि हम चार-पाँच बार मिले हैं। लेकिन शायद मैं ये कहूँगा कि इधर चार-पाँच महीनों में हम असली शायरा से चार-पाँच बार जुदा हुए हैं।

—बशीर बद्र

TUTE

UDY
MLA

20563

CATALOGUED

S. No - 53
Vanr

ख़ुदा से ख़ुद तक

वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002

फोन : 3273167, 3275710 • फैक्स : 3275710

e-mail : vani_prakashan@yahoo.com

vani_prakashan@mantraonline.com

ख़ुदा से ख़ुद तक

नेहा शरद

Library IIAS, Shimla
H 819.101 N 313 K
00102589

H
819.101
N 313 K

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 102589
DATE.....6-12-2001
SHIMLA

ISBN 81-7055-786-0

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 2001
© लेखिकाधीन
मूल्य : 125.00 रुपये

शुभम ऑफ़सेट, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

KHUDA SE KHUD TAK
by Neha Sharad

उन प्यारी आँखों के लिए,
जिनकी ख़ामोशी ने मुझे ये ज़ुबान दी है।

और क्या कहूँ

'खुदा से खुद तक' अहम् ब्रह्मास्मि का नाद नहीं, बल्कि मेरे केनवस का साइज़ है।

कविताओं को शीर्षक देकर उन्हें किसी फ्रेम में नहीं बाँधा है मैंने।

मुझे आज भी ये नहीं पता कि ये कविताएँ मैंने लिखी हैं या मुझसे किसी ने लिखवा ली हैं।

वनों की सुरक्षा हेतु
नये विभाग बनाये गये
और उन नये विभागों की
नयी कुर्सियों के हेतु
कई पेड़ काटे गये !

मेरी पहली कविता! शुरू में इसी तरह से ख़ूब लिखीं। फिर ऊपरवाले से, पप्पा से, और...और ख़ूब-से गिले-शिकवे और प्यार के जज़्बातों का इजहार।

सभी को इस किताब में शामिल कर लेती तो किताब भारी तो बन जाती, पर शायद इसका वज़न कम हो जाता।

इस समय जो मनःस्थिति या ये कह लें कि दिमाग़ जिस सीढ़ी पर चढ़ा है, बस वही कविताएँ इसमें शामिल हैं।

पप्पा लेखक, मम्मी अदाकारा और दोनों की वजह से बचपन से ही मुझे किताबों, साहित्यकारों, नाटककारों और हर तरह के कलाकारों का साथ मिला।

हालाँकि घर में गद्य ही लिखा और पढ़ा जाता रहा, फिर भी मीरा से महादेवी तक, ग़ालिब से गुलज़ार तक सभी को ख़ूब पढ़ा है मैंने।

मुझसे ये सवाल किया जाता था कि तुम तो एक लेखक परिवार से हो, फिर तुम क्यों नहीं लिखतीं? मेरा जवाब होता था कि संगीतकार या नर्तक का बच्चा बचपन से अपनी आँखों से देखता और कानों से सुनता है, इसीलिए उसका भी एक दिन कलाकार बन जाना तो समझ में आता है। लेकिन पप्पा को कोने में लिखते देखकर मैं क्या सीखूँ? मैं भी उतना ही समझती हूँ जितना कि आप पप्पा के लेखों को बाद में पढ़कर, जानकर समझते हैं। यही वजह रही कि मम्मी इरफ़ाना शरद की तरह मैं भी बचपन से रंगमंच पर अभिनय कर रही हूँ।

पप्पा के जाने के बाद मम्मी भी नौ साल की लम्बी बीमारी के बाद चल बसीं, तो केवल वह ख़ुदा ही मेरे पास रह गया था, जिससे मेरी पहचान किसी ने भी नहीं करवाई थी। धीरे-धीरे वह ख़ुद ही मेरी ज़िन्दगी में आ गया और उसने अपना घर भी बना लिया है। कभी वह अजनबी दोस्त हो जाता है तो कभी वह दोस्त अजनबी...

ये दोस्ती अभी शुरू ही हुई है... फिर इसी दौरान अचानक कविताएँ लिखने लग गयी। हर वक़्त पप्पा के आसपास रहना, पप्पा को ख़ूब चाय पिलाना, बहाने से उनके काग़ज़ देख लेना शायद काम आया।

पप्पा के एक दोस्त ने मुझसे कहा था कि बेटे, लोग जितना एक ज़िन्दगी में देखते हैं तुमने अभी से देख लिया। तुम्हें किस बात की फिक्र?

और मैं मुस्करा दी। वही मुस्कुराहट पेश है।

ये कविताएँ, जैसा मैं महसूस कर रही थी, उसी तरह काग़ज़ पर आयी हैं। इस चदरिया को मैंने झीनी-झीनी ही रखा है, बे-वजह भारी शब्द क्यों टाँकूँ?

और क्या कहूँ? आप ख़ुद ही समझदार हैं।

—नेहा शरद

इशारों के साथ

नेहा ग़ज़ल नहीं कहती, लेकिन उनकी नयी-नयी शायरी जेह्न और दिल को छूनेवाली ऐसी अजनबीयत है जो किसी ऑयडियल की तरह ख़ूबसूरत है। सिर्फ़ उर्दू के वसीले से कुछ अच्छे-बुरे लिखनेवाले को ज़ेह्न में बसाकर मुतमईन रहना उर्दू से मुहब्बत नहीं है। ये मसला यहाँ पैदा हुआ कि नेहा शरद की शेरी दुनिया में मैं कई दिनों से भटक रहा हूँ। हर दिन ये सोचता हूँ कि आज रात उन पर कुछ लिखूँगा, लेकिन रात ग़ारी हो जाती है। अपने पसंददीदा शायर या शायरा पर लिखना जितना आसान लगता है, उतना ही मुश्किल होता है। अदब और शायरी की जिन औरतों को मैंने आधा या अधूरा, अच्छा या बुरा जाना है, वे कुछ दूर साथ चलकर अलग हो जाती हैं। उन पर बहुत आसानी से लिख सकता हूँ। उनकी पॉएटिक पर्सनालिटी किताब की तरह होती है। जब चाहा पढ़ लिया।

नेहा का मामला बिलकुल अलग हो गया है। उनको देखा है। उनसे बातें की हैं। वो कहेगी कि हम चार-पाँच बार मिले हैं। लेकिन शायद मै ये कहूँगा कि इधर चार-पाँच महीनों में हम असली शायरा से चार-पाँच बार जुदा हुए हैं। अपनी दुनिया में जीना कितना आसान है और अपनी दुनिया को जानना कितना मुश्किल है। शायरी की इस अजनबीयत में कितना विश्वास, कितना घमण्ड है कि हम एक अजनबी के वसीले से अपनी छोटी-सी दुनिया को आइडेंटीफाइ कर सकते हैं। शायरी और अदब ने मेरे अन्दर के इनोसेन्ट इन्सान को कई औरतों को जानने और उनकी इज़्ज़त करने की सआदत दी है। मसलन् मेरे लिए मीरा से ज़्यादा कोई दूसरी शायरा नहीं है। फ़ारसी का एक शब्द है, दर्द। इस 'दर्द' की हुकूमत अरबी, फ़ारसी और उर्दू शायरी पर परवरदिगार जैसी है। फ़ारसी के बड़े शायरों से मिलते हुए जब हम 'मीर' की ग़ज़ल के 18878 शेरों के जंगल से गुज़रते हैं तो उनके सदाबहार पेड़ों पर दर्द की हुक्मरानी से हैरान हो जाते हैं। 'ग़ालिब' के उर्दू दीवान में सिर्फ़ 1415 शेर हैं। उनके भी वही शेर चमकते हैं, जो दर्द से महकते हैं। बड़ी आसानी से हम ये कह सकते हैं कि ग़ज़ल के बहुत बड़े शेर सिर्फ़ दर्द की आग और दर्द की ख़ुशबू है। लेकिन दर्द के शब्द को राजस्थान की धूप में जिस तरह रोशन करके सारी दुनिया में 'मीरा' ने बिछा दिया है, उसके नूर से दिलों और मन्दिरों को उजालों से भर दिया है–उसकी कोई मिसाल कहीं नहीं है। 'मीर' और 'ग़ालिब' का कोई शेर वह दर्द नहीं छू सका जो 'मीरा' के इस भजन का दुःख है–

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी
मेरा दर्द न जाने कोय।

सिर्फ़ इस भजन से मीरा मेरे लिए शायरी की सबसे बड़ी देवी है। ठीक है, शायरी की दुनिया में इस छोटी-सी लड़की का मीरा से कोई कॉन्फिलिक्ट नहीं है, लेकिन यह हक़ीक़त है कि इधर कई महीनों से उनकी शायरी जब चाहती है, ग़ज़ल से, उस बड़ी ग़ज़ल से जो वली, मीर और मोमिन की ग़ज़ल है, मुझसे माँगकर ले जाती है और मुझे कुछ नया-नया अहसास होता है।

ग़ज़ल की दुनिया से जब मैं नावाक़िफ़ था तब भी ग़ज़ल में मुझे खुदा से लेकर साक़ी तक सब मिल जाते थे, लेकिन औरत नहीं मिलती थी। फिर जब दिल दुखा तो 'मीर', 'ग़ालिब' से लेकर 'जिगर' और 'वाहिदी' तक जी बहलाने के लिए हर लफ़्ज में जवानी, ज़िन्दगी और इश्क़ की अज़मतों से मिलाते रहे। एक रात ग़ज़ल ने नहीं, 'रेखती' ने घर की उन दो सच्ची औरतों से मिलाया, जिनको मैं बचपन में सोच भी नहीं सकता था। जिंदगी के ऐसे तर्जुबे ग़ज़ल से बाहर थे इसलिए शेर को बताया गया कि ये ग़ज़ल नहीं है, क्योंकि इसमें एक काली और एक गोरी औरत बोल रही है, जो घर की मामूली नौकरानी होती है।

रात कोठे पे देख ली चोरी अन्ना।
काली ऊपर थी चढ़ी नीचे थी गोरी अन्ना।

ग़ज़ल के इस मतले को ग़ज़ल कहना बहुत बड़ा पाप होगा, क्योंकि इसे औरत की तरह बोलने की इजाज़त है। वरना सौ वर्ष पहले लखनऊ की एक शेरी महफ़िल में उमराओ जान 'अदा' जब अपनी ग़ज़ल का ये मतला पढ़ती हैं–

काबे में आके भूल गया राह दैर की
ईमान बच गया मेरे मौला ने ख़ैर की।

तो नेकर पहननेवाले एक बेवकूफ़ बच्चे की तरह एक पूरे ख़ाँ साहब ने भरी महफ़िल में बेताब होकर पूछा था–बाईजी, यह 'भूल गया' क्यों? आप 'भूल गयीं' क्यों नहीं कहतीं। उमराओ जान 'अदा' ने ग़ज़ल की ज़बान में पुरजोश ख़ाँ साहब की टोपी यह कहकर सरे-बज़्म उतार ली थी कि ख़ाँ साहब मैं ग़ज़ल पढ़ रही हूँ, 'रेखती' नहीं। तब से अब तक हिन्दुस्तान में मैयारी ग़ज़ल वही समझी जाती है, जिसमें औरत को मर्दाना लहजे में अपनी बात कहने की पर्दादारी आती हो।

हमारे एहद में ग़ज़ल की हिन्दुस्तानी शायरा दाराब बानो 'वफ़ा' का यह शेर ग़ज़ल का यही शेर है। क़ाबिले-क़द्र है कि उसमें औरतों

की बोली का लहजा और ग़ज़ल की सारी ख़ूबियाँ भी हैं—

मैं इस वास्ते बोए नहीं ख़्वाबों के दरख़्त
कौन जंगल में लगे पेड़ को पानी देगा।

हिन्दुस्तान से कहीं ज़्यादा कामयाबी के साथ लड़कियों के लहजे में पाकिस्तान की कई शायराओं ने अच्छे शेर कहे हैं।

कोई 45 वर्ष पहले दिल्ली का मुशायरा लूटने पाकिस्तान से एक लड़की आयी थी। ग़ज़ल, उम्र, आवाज़, सलीके और रखरखाव से छोटी बहर की ग़ज़ल जौहरा निगाह ने चन्द लम्हों में रेडियो से पूरा-पूरा हिन्दुस्तान लूट लिया था। अभी मिडिल ईस्ट में उनसे मुलाक़ात हुई। मुशायरों में बहुत कम आती हैं, लेकिन ऐसे लाजवाब शेर कहती हैं—

मैं तो अपने आप को उस दिन बहुत अच्छी लगी
वह जो थककर देर से आया उसे कैसा लगा।

1960 के बाद लाहौर की किश्वर 'नाहिद' ने औरत की ग़ज़ल का ख़ूबसूरत आग़ाज़ किया—

देखकर जिस शख़्स को हँसना बहुत
सर को उसके सामने ढँकना बहुत।

तुम्हारे शहर के लड़कों को क्या हुआ 'नाहिद'
बहुत उदास मिले कोई दिल दुखा ना मिला।

उसी ज़माने में पाकिस्तान की फहमीदा रियाज़ ने भी एक ख़ूबसूरत नज़्म लिखी थी। इस नज़्म में एक लड़की माँ बननेवाली है। बच्चा पेट में साँस ले रहा है और औरत अपने मर्द को ज़िन्दगी की ये आहट सुनाना चाहती है। उर्दू में ऐसी कोई नज़्म नहीं थी।

फहमीदा रियाज़ अपनी नीम सियासी जिहानत और शायराना बेबाक़ी से अधिक लाउड हो गयी हैं। सेक्स का इंटलैक्चुअल होना भी शायरी की मासूमियत और ज़िन्दगी की जिहानत को खा जाता है।

परवीन शाकिर बहुत जल्दी चली गयी, लेकिन उनके अमर नाम होने में कोई शक नहीं। अभी मैंने हिन्दी में एक संकलन 'रहमतों की बारिश' वाली ग़ज़ल के नाम से तरतीब दिया है। बीस वर्ष पहले उर्दू ग़ज़ल को हुमैरा रहमान ने माँ को इस तरह ऊँचाई दी है—

वो लम्हा जब मेरे बच्चे ने माँ कहा मुझको
मैं शाख से कितना घना दरख़्त हुई।

हिन्दुस्तान में ग़ज़ल की औरतें मुशायरे और कवि-सम्मेलनों में पैदा होना चाहती हैं—

पेट बड़ा बदकार है बाबा!

इशरत आफ़रीं हिन्दुस्तान में पैदा हुई। कराची में जवाँ हुई। बलरामपुर में उसकी शादी हुई और अब वो अमेरिका में हैं। ग़ज़ल की ज़मीं को आसमान कर देती हैं—

मैं तेरा बिस्तर रखूँ आबाद तू आँगन मेरा
मैं बदन-भर फूल हूँ और तू दिया-भर आग है।

पढ़ रहा था वह किसी और के आँचल पे नमाज
मैं बस आइना-ओ-कुरान लिये हेराँ थी।

मैंने नेहा की शायरी पर एक लम्बा मजमून लिखा था। वह हमारे बड़े मियाँ फ़िराक़ गोरखपुरी की झूठ की तरह ख़ूबसूरत हो गया था। इन दो शेरों को मिला दीजिए। आधा-आधा सच मिलकर शायद नेहा की पूरी कविता को सुनने की कोशिश कर लें—

ख़ूबसूरत, उदास, ख़ौफज़दा
वो भी हैं बीसवीं सदी की तरह।

ख़ूबसूरत, ज़हीन, लामहदूद
हम हैं इक्कीसवीं सदी की तरह।

इन इशारों के साथ नेहा को तीन-चार बार पढ़िएगा। शायद कुछ आपके साथ आपका हमेशा के लिए हो जाए।

—बशीर बद्र

अनुक्रम

हँसती-खेलती... 15
आईने में देखती हूँ... 17
एक ख़जाने को मैंने... 18
बड़े-बड़े हर्फों में... 19
ये शान्ति... 20
काँपती उँगलियों... 21
आज एक मशीन ने... 22
एक निराश... 23
इन सूखती... 24
बड़ा बनने की... 25
लड़की घर की... 26
आपने कभी घर को... 27
कैसे बना ये... 29
बँधा-बँधाया सा... 30
आज मैंने कमाई की है... 31
अजीब सपनों का... 32
तुझे समझाना... 33
आ खुद से मिला दूँ तुझे... 35
हाँ, ये ठीक है कि... 36
ढल रही हूँ इस माहौल में... 37
शांति का रूप... 38
वो ना ग़रीब है... 39
पत्तों का हरा रंग... 40
कुछ बातें बोलने में... 41
तुम चाँद न बन जाना... 42
खुद अपनी आवाज़... 43
दुनिया के इस कोने में... 44
काजर की कोठरी... 45
तुम्हें हक़ है कि... 46
हर रंग में रँगी हूँ... 47
किसी को गले लगाया... 48
वो बड़ी गहरी नींद... 49
परिस्थितियाँ... 50
मैं तो भरा था... 51
हर आदमी... 52
धरती चीर कर... 53
पिया को कुछ... 54
शुक्रगुज़ार हूँ... 55

हँसती-खेलती
दौड़ती-भागती मेरी माँ
नीली फ्रॉक में,
नज़र आती है मुझे
जब भी,
ये अहसास होता है
कि अब,
मैं बड़ी हो गयी हूँ

एक सहेली नज़र आती हो मुझे,
जिसे देखती हूँ जाते...
जैसे किसी खेल में हरा के
बढ़ गयी हो आगे
एक क्षण में,
लम्बी उम्र दे दी तुमने मुझे
खुद तो चल दीं उसके पीछे-पीछे
जिसके लिए आयी थीं नीचे
तुम्हें पता था तुम्हें क्या चाहिए
पर मुझे तो यह भी नहीं मालूम
कि हम जो खेले वो खेल क्या था?
ज़रा नीचे भी तक लो
दिन-भर तुम्हारे साथ खेलकर
थकी-अकेली मैं
सकपकाई खड़ी हूँ
अधूरा खेल छोड़कर जाना
क्या अच्छा है?
जब मेरा 'दाम' आया
तो 'दामन' छुड़ाकर निकल लीं

तुम शायद खेल जानती थीं
समझ के आगे बढ़ गयीं
और मैं...
'गिप्पा' हाथ में लिये खड़ी हूँ
साथी के इन्तज़ार में हूँ।

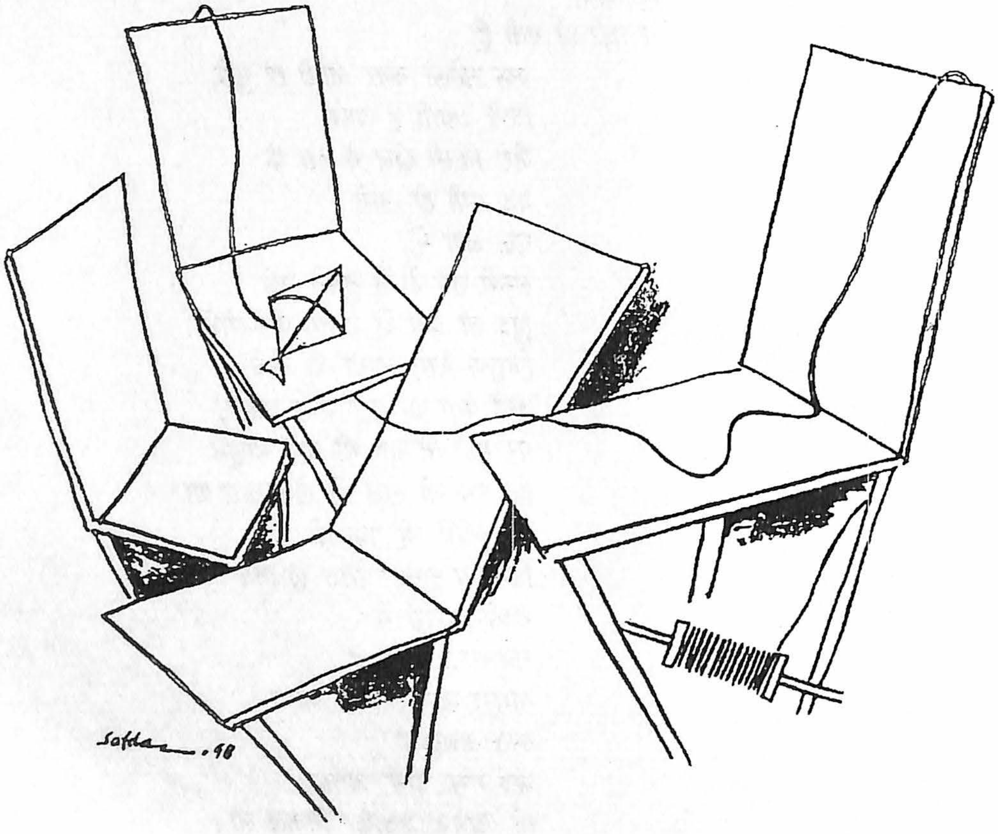

आईने में देखती हूँ
अपनी सूरत
दसियों बार
अबकी कुछ यूँ हुआ है
आईने की उस सूरत ने
मुझे देखना शुरू कर दिया है
वो आँखें भीतर तक देख लेती हैं
वो सब-कुछ भेद लेती हैं
पहले मैं उनसे बात करती थी
अबकी कुछ यूँ हुआ है
कि वही मुझसे मेरा हाल
पूछने लगी हैं
वो ना सहेली है
ना परछाईं है
ना मेरा अक्स है
वो 'वो' है जो ख़ुद
एक वजूद एक शख़्स है
जो कि यक़ीनन मैं नहीं हूँ
उस अपरिचित को
जानना चाहती हूँ
जो आमने-सामने
आ जाती है हर बार
और अब
वो तय करती है
कि मैं बदशक्ल हूँ
या ख़ूबसूरत।

एक ख़जाने को मैंने
सड़क पर घूमते देखा है
सादा-सा कुर्ता, पाँव में चप्पल
बाल कुछ बिखरे-बिखरे से
हाथों में कमाल हुनर है
आँखें तो मानो जादू हैं
छोटे-मोटे ब्रश, लकड़ियों से
ऐसे-ऐसे रंग भरता है कि बस,
उसकी अपनी ज़िन्दगी बेरंगी है न जाने क्यों
आसपास एक फ्रेम-सा बना रखा है
अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से वो
उसकी रखवाली भी करता है
तस्वीर को दूर से देखिए, पास आने की इज़ाजत नहीं
पहले जो कोशिश भी करते थे अब छिटक गये हैं
हरेक से फासले अब और बढ़ गये हैं
वो खुद ख़ाली रहा तो क्या हुआ
न जाने कितने कोरे काग़ज़ों में
रंग भर सकता था वो
वो ये कर सकता था
वो वो कर सकता था
एक ख़जाने को मैंने
सड़क पर घूमते देखा है।

बड़े-बड़े हर्फ़ों में लिखा था
ज़िन्दगी में ज़िन्दादिली रहे
कुन्द दिमाग़ों को रोशनी मिले
भूखों को थाली-भर खाना
राजनीतिज्ञों को थोड़ी शर्मो-हया
जनता को वोट देने लायक नेता
अमन और शान्ति हर ओर हो
नीचे छोटे-छोटे हर्फ़ों में लिखा था
सवैधानिक चेतावनी
ज़्यादा सोचना *is injurious to health.*

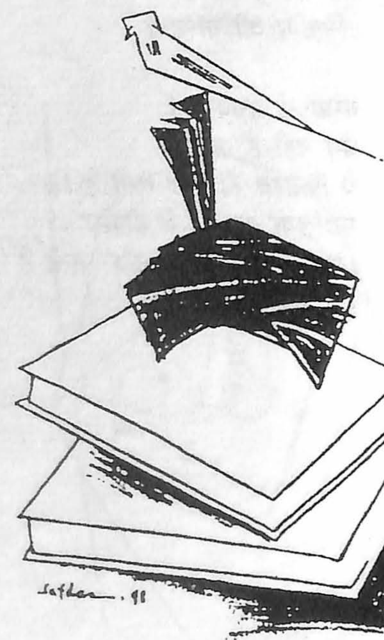

ये शान्ति कितना अशान्त करती है मुझे
हर ओर हरा-ही-हरा
ऊँचे-ऊँचे चुप-चुप से ये पहाड़
पूरे बदन को सिहरन से भर दें
ऐसी ठण्डी हवाएँ
चार ही दिन में याद आ गयी
मुझे अपनी बे-तरतीब ज़िन्दगी
कितने काम छूटे हुए हैं
पूरा फाईलों का अम्बार है
दसियों मीटिंग्स् अधूरी हैं
बार-बार गूँजती हैं वो
टेलिफ़ोन की घण्टियाँ

चम्पा के उपवन में
चैन नहीं है आता
ये फ़ितरत ही कुछ ऐसी है कि
मछलियों का ख़ाली टोकरा
सिर पर रखकर ही नींद आती है
इस मछुआरिन को।

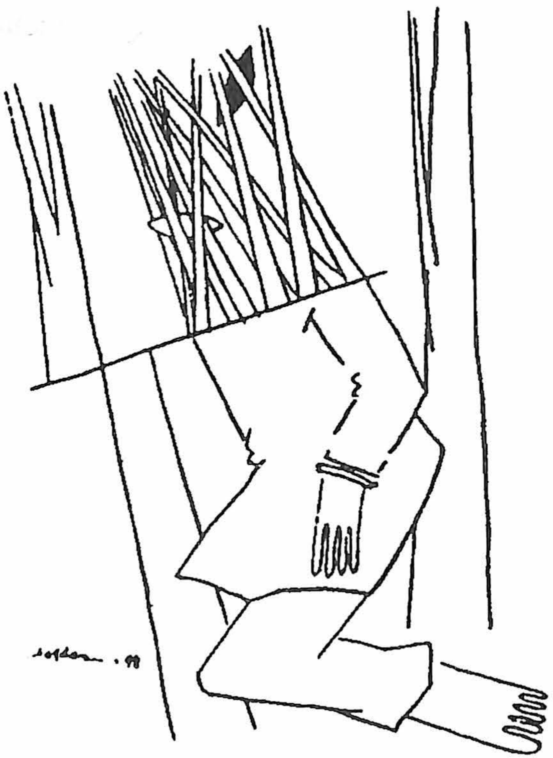

काँपती उँगलियों को देखा है मैंने
हर काम सँभालते-सहेजते,
बचपन से खाना बनाती
पर उनके लिए परोसने में
झिझकती हैं ये उँगलियाँ
पढ़ने, समझने में तेज़ ये दिमाग़
बॉस/पिता उनके सामने
उठती नहीं हैं ये उँगलियाँ
हर काम सही करते हुए भी
ग़लत का अहसास लिएं हुए ये
अपनी साड़ी के पल्लू को
छूकर
अपने अस्तित्व का
विश्वास करती ये उँगलियाँ
हर-पल, हर-क्षण
दौड़ते-भागते
ज़िन्दगी को उधेड़ती-बुनती ये उँगलियाँ
डरी-डरी, सहमी-सहमी
हर पल को पकड़कर
समझने की,
कोशिश करती ये उँगलियाँ
अपने होंठों पर एक उँगली रख
सौ सच को दबाती ये
उँगली के हर इशारे से
अपने को समझती-समझाती ये
सहेजने-समेटने की कोशिश में
लगी ये भागती-दौड़ती उँगलियाँ।

Indian Institute of Advanced Stud.
102589

आज एक मशीन ने
फिर एक मशीन को दिया जन्म
आज जब चौथी दफे बनी माँ
तो अपनी माँ फिर याद आयी
सारी ज़िन्दगी उसने कितनी मेहनत की
कि मुझे बाहर का कोई साया छूने न पाये
मेरे दिमाग़ की कोई भी खिड़की खुलने ना पाये
मैं रहूँ सात तालों में बन्द
ना हवा लगे मुझे ज़माने की
ना ले पाऊँ ज़िन्दगी की गन्ध
फिर उन सात तालों की चाबी सौंप दी ऐसे को
जिसने उसे पहली ही रात जा गुमाया
जैसी बन्द थी, वैसी बन्द हूँ
अब ये इस चौथी को सिखाना है
ज़रा हवा लगी, ज़रा भी खिड़की खुली
तो ये अपना मतलब न समझ जाये
जितनी समझदार होगी, दुःख उतने ही पायेगी
मैं इसे भी रखूँगी तालों में बन्द
मशीन बनी रही तो ही ज़िन्दा रहेगी
एक भी रोशनदान जो खुल गया
तो हमें ना जीने देगी

मैं एक मशीन हूँ
सिर से पाँव तक ढकी
एक लाश हूँ
और दूँगी और लाशों को जन्म।

एक निराश, बूढ़ी थकी माँ
अपनी बेटी को
दहेज में दे ही क्या सकती है
कुछ भरे-ख़ाली से कनस्तर
एक टूटी-फूटी चारपाई
कुछ बरतन और हाँ,
पता नहीं कहाँ से बचा हुआ
एक सोने का कंगन

> *नई साड़ी पहनकर*
> *पतला-सा कंगन हाथ में डालकर*
> *बेटी रात तो बिता लेगी*
> *पर सुबह होते ही*
> *बेरोज़गार झुके कन्धे, मुर्झाये दिलवाले*
> *पति के आसरे पर*
> *दिन कैसे निकालेगी?*

बिचारी बीसवीं सदी
पैबन्द लगी लाल साड़ी में
सपने हज़ार लिये बैठी है
भगवान करे
वो सपने साकार हों
वर्ना अपनी बेटी के
दहेज के लिए भला ये
क्या जुटा पायेगी ?

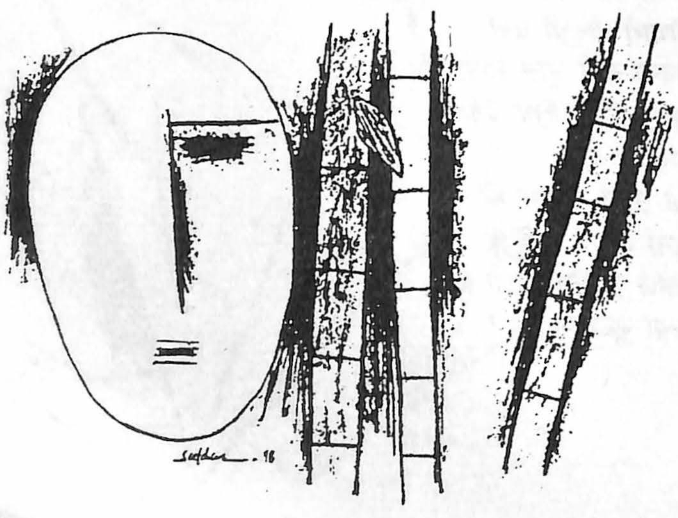

इन सूखती नस्लों को देखकर
काँप जाती हूँ मैं
जिस्म सूखे, दिल सूखे, दिमाग़ सूखे
ना कुछ समझते हैं
ना समझने को तैयार हैं ये
एक सूखे दिल-दिमाग़वाली
माँ का बच्चा कैसा होगा?
कब ये अपने आपसे बदला लेना बन्द करेंगे
पिता को आदत है बरसों से
पानी पीकर सोने की
माँ छोड़े अपने में से आधा, बढ़ती बेटी के लिए
बचा-खुचा बेटी खिला दे अपने छोटे भाई को
एक छोटे पेट जितना
अन्न मिलता पूरे घर-भर को
धूप में तपकर
धूल में अटकर
सपने सारे सूख गये हैं
बेरंग-सी ज़िन्दगी जीते
बंजर माटी जैसे सब
पता नहीं कब बदलेंगे
ये सूखे तन ये सूखे मन!

बड़ा बनने की कोशिश में
कुछ छोटा ज़रूर हुआ हूँ मैं
दो नये कमरे बनवा लिये हैं मैंने
ये घर अब बँगले जैसा लगता है
हर सामान मेरे आसपास है
बच्चों को ज़रूर परदेस भेजने की
तैयारी में हूँ
जहाँ मैं रहता हूँ
वहाँ सब-कुछ मेरे हिसाब से ही है
बस, एक खट्टे अंगूर की बेल
बढ़ आयी है
अहाते से दालान तक
चढ़ आयी है।

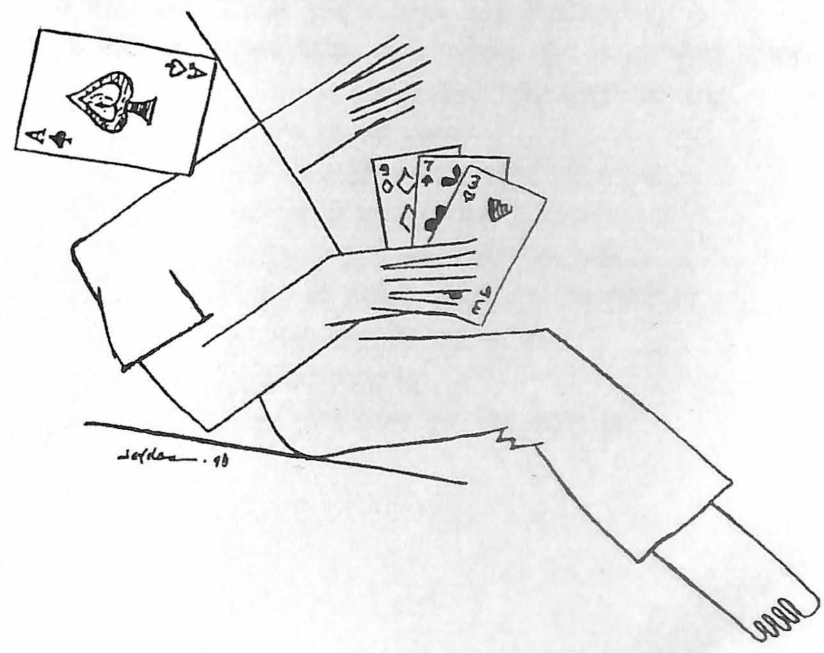

लड़की घर की है रानी
लगती बिलकुल है धानी
हाथ लगाओ खिल जाती है
बाहर निकालो तर जाती है।

आपने कभी घर को मुस्कुराते देखा है?
जी हाँ, मैंने देखा है
एक सफ़ेद श्वान था हमारे पास
पप्पा ने उसका नाम दिया था श्वान-श्रेष्ठम्
वैसे वो था भी अपने नाम के जैसा ही
काली नाक, ज़मीन पर लटकते उसके बाल
बित्ते-भर का, घूमता-फिरता था घर-भर में
कब पप्पा काग़ज़ और कलम एक ओर रख बैठेंगे
और वो मुस्कुराता-इतराता पहुँचेगा फौरन पप्पा के पास
मम्मी ने अब तक खाना क्यों नहीं बनाया
ऋचा क्यूँ नहीं लौटी कॉलिज से घर
श्वान को रहती थी इन सबकी बड़ी फिकर
मुर्गियों के पीछे दौड़ता, चूहों से थोड़ा डरता
बच्चे जब उस पर करें सवारी, धीरे से बस चूँ ही बोलता
एक दिन एक भीगा चिड़िया का बच्चा उठा लाया
चाट-चाटकर उसे सुखाया
मम्मी की साड़ी खींचकर फौरन उन्हें बुलाया
बाहर धूप में ले जाकर फुर्र से उड़वाया
उसे देखकर सारी थकान मिट जाती थी
मैं छोटी थी इसलिए उसका बड़ा रौब खाती थी
एक प्यारा-सा सफ़ेद बर्फ़ का गोला
घर में रहा करता था
घर का कोना उससे मुस्कुराया करता था!

(ii)

कसा-कसा-सा बदन
लम्बे लटकते उसके बाल
आँखें लिये सपने हज़ार
बेमतलब मुस्कुराती हुई
ख़जाना ही ख़जाना
अपने मेहनती हाथों से
बस को रोकने की कोशिश में हैं
कहीं की मलिका हो सकती थी वो
वादियों में घूमती-फिरती, नाचती वो
वो ये कर सकती थी
वो वो कर सकती थी
टाइपराइटर के बेसुरे सुर में सुर मिलाती
हर परिचित / जिसमें वो आज भी है अपरिचित
को देख मुस्कुराती वो
शाम को माथे से झिलमिलाता
पसीना पोंछकर
तेज़ क़दमों से जाती वो
किसी ख़जाने से कम नहीं वो
जिसे अक्सर मैंने सड़क पर देखा है

गाड़ी साफ़ करता फूल बेचता
लड़ता और झूठ बोलता
अपने छोटे मुँह से
बड़ी-सी गाली की जुगाली करता
नंगे पाँव
उसे अक्सर देखा है सड़कों पे
जब कि भटकती फिरती हूँ मैं।

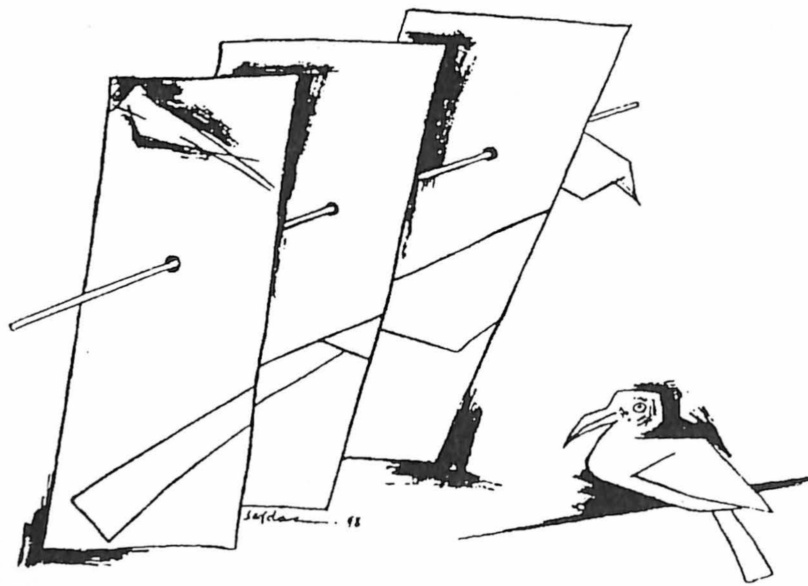

कैसा बना ये अपना, बेगाना-सा
दिल पर अपने हाथ रखकर मुझको ये समझाना
साथ खेले, साथ पढ़े, साथ बढ़े
ये क्यूँ कर हुआ कि मैं हुई 'अलग'
और वो हुआ 'जुदा'।

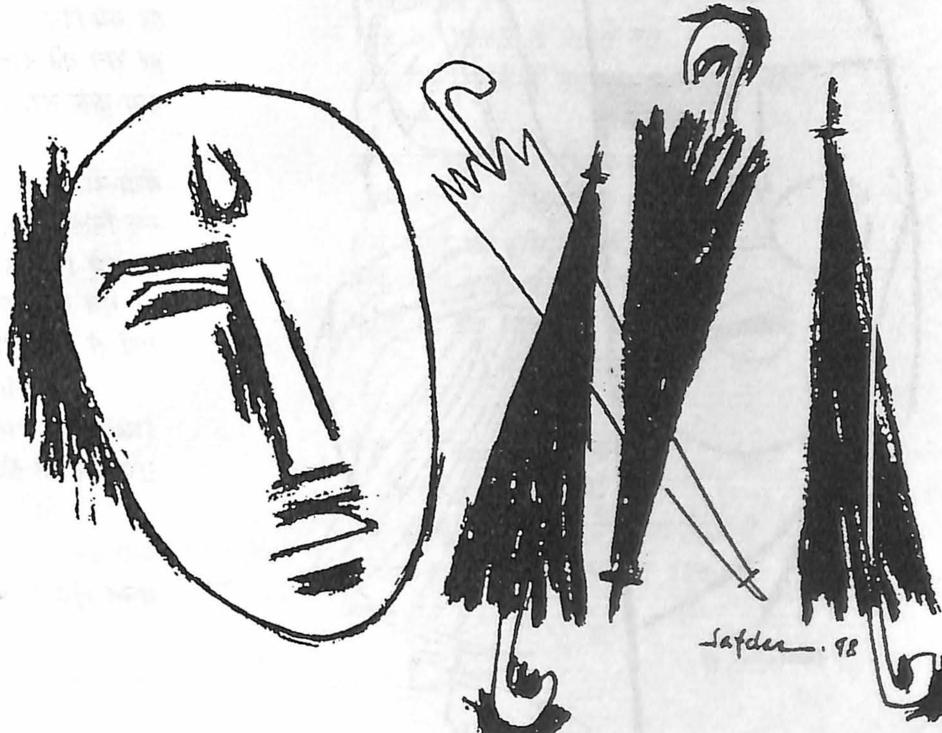

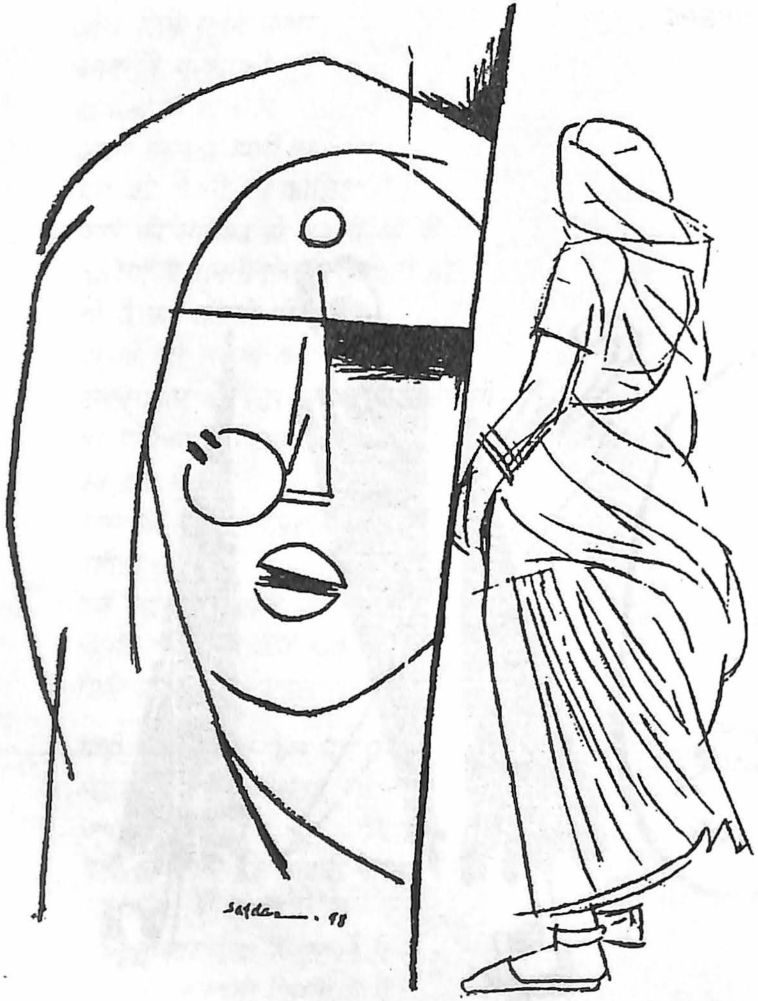

बँधा-बँधाया-सा हिसाब है ज़िन्दगी का
मन मिले ना मिले
रोटी के लिए
ये तन तो देना होगा
इच्छा हो या ना हो
साथ सोना मजबूरी है
यहाँ से निकलूँगी तो पता नहीं
फिर कहाँ जाऊँ
हर नये-दिन के डर से
हर रात की बात माननी ही है
क्या करूँ मेरा धन्धा ऐसे ही चलता है

बँधा-बँधाया-सा हिसाब है ज़िन्दगी का
मन मिले ना मिले
हर नये दिन के डर से
हर रात की बात माननी है
यहाँ से निकलूँगी तो पता-नहीं
फिर कहाँ जाऊँ
इच्छा हो या ना हो ये सब मैं करूँगी
संग डोर जो बँधी है
सुनूँगी, सहूँगी और वहीं पर रहूँगी
क्या करूँ
बेमन खूँटे से बँधी ब्याहता जो हूँ।

आज मैंने कमाई की है जम के
आज मैं पैसे उड़ाऊँ जम के
पलट के देखा
एक बिचारी गरीब़ बुढ़िया खड़ी थी
बिखरे बाल और चिंदा-चिंदा साड़ी थी
चलो, एक सौ का नोट इसे दे दूँ
इसकी झोली खुशियों से भर दूँ
बदल दूँ क़िस्मत इसकी भी
आसपास तीन-चार लोगों को और
दिखाते हुए
भीड़ को इशारों से बताते हुए
उस फटी झोली में डाला एक जानदार नोट

वो नोट का वज़न सँभाल नहीं पायी
आसपास के लोगों ने की धक्का-मुक्की
उस रुपये को हथियाने के लिए
साँस फूल गयी, ज़ोर से गिरी जो...
मुट्ठी में अब जान नहीं बस
रहा एक जानदार नोट

देना है किसको-कितना-कब
ये जानता है शायद सिर्फ़ रब
जब भी कम/ज़्यादा हमने लिया/दिया है
ये क्या हुआ, ये क्यूँ हुआ का प्रश्न ही
हाथ लगा है।

अजीब सपनों का शहर है ये...
दस करोड़ लोग
और सौ करोड़ सपने
हज़ारों रास्ते और
एक ही मंज़िल
लाखों हाथ और लाखों पैर
भरते अपना-अपना पेट
मरने की फ़िक्र में जिये जा
रहे हैं
पीने की फ़िक्र में मरे
जा रहे हैं
ऊँचे-ऊँचे से अरमान लिये
बौने-बौने से लोग
कमर तक भीगे हुए
फिर भी सिर पर छाता लगाये
हुए-से ये लोग
चलना भूल गये हैं
ये दौड़ते-भागते लोग
ज़िन्दगी की उठा-पटक में लगे
ट्रेनों-बसों में ये लटकते-से लोग
अपनी हस्ती को मिटाकर
नयी बस्ती बनाते हुए ये लोग।

तुझे समझाना कितना आसान है
तुझे बहलाना कितना आसान है
ठण्डी हवा चली, कोई दिल को छू गया
तुम मुस्कुरा दिये
बिजली कड़की, कोई चीख़ा, कोई चिल्लाया
तुम परेशान हो गये
धूल-भरे रास्तों को, राशन की लाईनों को देख
तुम हैरान हो गये
माचिस-जैसे घर, फटी जेबों को सहकर
तुम बेहाल हो गये
ठण्डी हवा चल दी, एक बच्ची हँस दी,
बॉस ने तन्ख़ा बढ़ा दी, बीवी ने अच्छी सब्ज़ी खिला दी
तुम आबाद हो गये
तुम्हें समझाना कितना आसान है...

(ii)

तुझे समझाना कितना आसान है
तुझे बहलाना कितना आसान है
हर ज़िन्दगी के साथ जी उठते हो तुम
हर मौत के साथ टूट जाते हो तुम
किसी दोस्त की दुश्मनी दिल दुखा जाती है
दुश्मन की ईमानदारी सच दिखला जाती है
एक सहारे के हटते ही डूबने लगते हो
एक सहारे के मिलते ही उड़ने लगते हो
प्यार में सुख मिले तो वहाँ मिले तुम
धन-शोहरत में सुख मिले तो वहाँ बसे तुम
नहीं तो मन्दिर के बाहर जूते मिले तुम्हारे...

सारे रास्तों पर भटक गये हो
रास्ता-दर-रास्ता भटक गये हो
घूमकर उसी घेरे में बार-बार
एक शून्य से एक शून्य की ओर
तुझे समझाना कितना आसान है
तुझे बहलाना कितना आसान है...

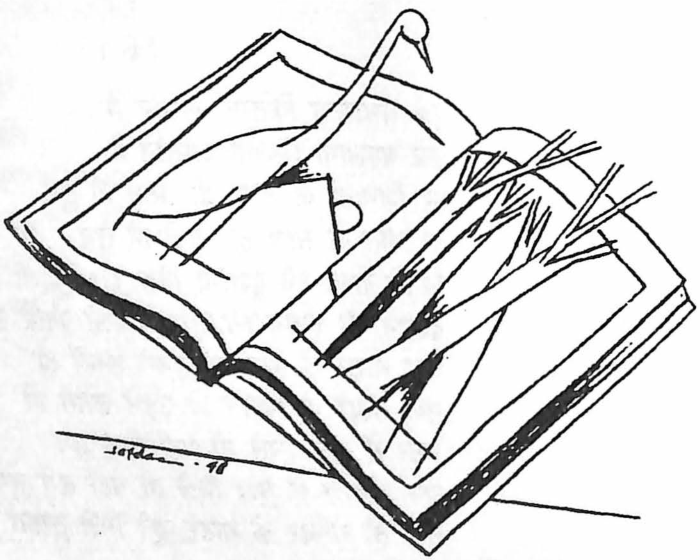

आ खुद से मिला दूँ तुझे
खुदा बना दूँ तुझे
अपने सुनहरे बालों को सुलझा ले तू
तेरा आईना जो है तेरे सामने मौजूद
पेशानी पर इतनी सलवटें कैसी
आ अपने कुर्ते की सलवटों से मिटा दूँ इसे
आँखों में भरे हैं समुन्दर
इन ख़ाली-सी आँखों में भर दे उन्हें
होठ दोनों मिलकर करें ख़ामोशी से ख़ूब-सी बातें
मुहब्बत-मुहब्बत-मुहब्बत
बाक़ी रहें सिर्फ़ इश्क़ के निशान
फिर एक नयी मैं
फिर एक नये तुम
एक एहसास जो खुद से मिला दे
एक जज़्बा जो ज़िन्दगी फिर दे दे
और ख़ुद से आ मिले
खुदा बना दे।

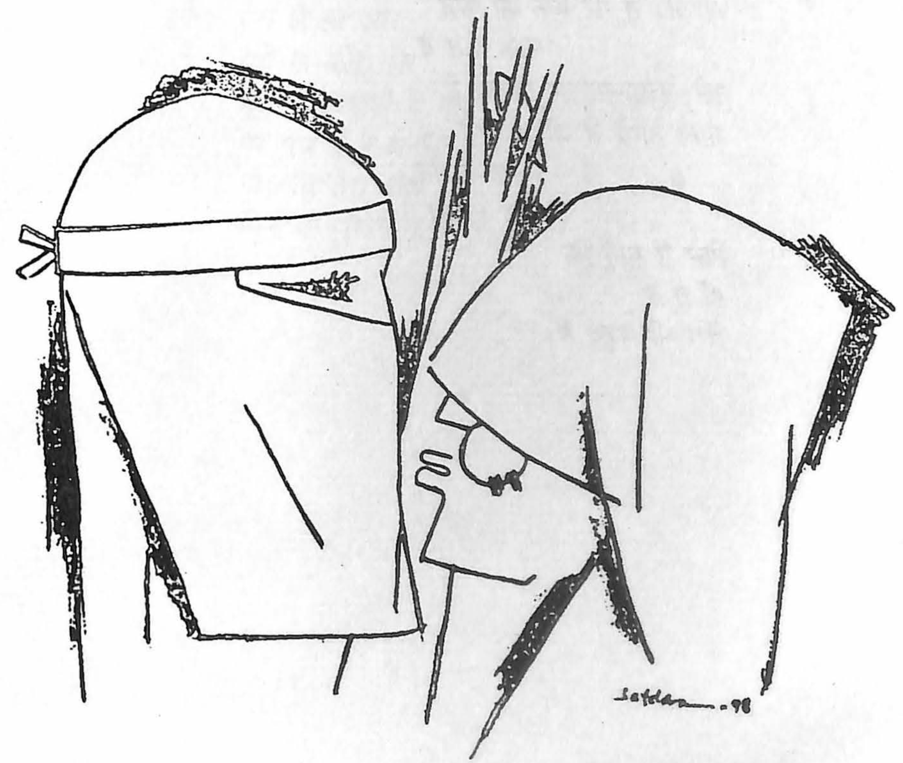

हाँ, *ये ठीक है कि*
ये हवा है जो बहती है
बिना कोई नागा किये
ये सूरज है जो सुबह होते ही
आ जाता है—शाम होते ही
अपने घर लौट जाता है
ये ज़मीन है खुला आसमान है
हरा-भरा जहान भी है
पर यदि तू मेरे बैंक का कर्ज़
माफ करा दे
मुझे अच्छा-सा घर दिलवा दे
अपने हाथों से जो गुत्थियाँ
बनाई हैं मैंने
इन्हें सुलझा दे
फिर मैं मानूँ कि
हाँ तू है
तेरा भी वजूद है।

ढल रही हूँ इस माहौल में
हौले-हौले से
जानती थी मिट्टी है अनमोल
अब समझ रही हूँ
कैसे लगता है इसका मोल
तोल-मोल लगाकर
हिसाब से हर बोल बोल
मन में हो चोर
फिर भी ना कर शोर
देख ले हर ओर
बचे ना कोई छोर
यूँ तो होनेवाली है भोर
पर मुझ पे न चलता कोई ज़ोर
पोर-पोर तेरा बोले
फिर भी ज़ुबान न अपनी खोल।

शान्ति का रूप विशाल है...
और ये चुप्पी
लघुता का अहसास लिये है
बिन बोले सब बयान करती है
बन्द मुँह से
सारे भेद खोलती है
ये वो ख़ामोशी भी नहीं
जो अपने में भाव भरे है
सिर्फ़ एक बन्द ज़ुबान है
जिसे शर्म आती है
अपनी ही बात फ़ाश करने में।

वो ना ग़रीब है
ना दुखियारी है
ना भिखारी है
फिर वो कौन है
जो अक्सर
एक मोड़ पर आकर
रुकी मेरी गाड़ी का
रास्ता रोककर
मेरे आगे हाथ जोड़ती है
मेरे इशारों से कुछ
समझाने की
कोशिश करती है
वो मेरी हम-उम्र है
कद-काठी भी मेरी जैसी
शक्ल भी हू-ब-हू...
अरे, ये तो मैं ही खड़ी हूँ
उस मोड़ पर,
जो दो-राहा है
गाड़ी के भीतर बैठूँ
या ठण्डी हवा में
ये आज फिर
तय नहीं कर पा रही हूँ
फिर उसी मोड़ पर
अपने को पाती हूँ
घूम-घूम
फिर वहीं आती हूँ।

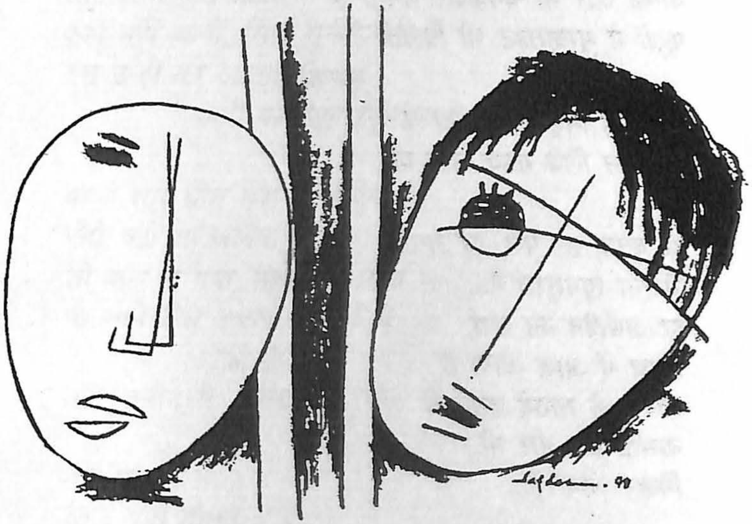

पत्तों का हरा रंग
अब चटकीला लगता है मुझको
उन पर गिरी ओस की बूँद
ना सिर्फ़ चमकती है
बल्कि और भी चमकदार लगती है
फूलों में मुस्कुराहट भी दिखती है
मुझको
चुपके से मिट्टी जो उठा के सूँघी तो
सोंधापन लिये महक उठी वो

हर वक़्त, हर पल, हर लम्हा
कितना ख़ूबसूरत है...
हर अर्थहीन का अर्थ
समझ में आज आया है
जीवन के साठवें वसंत में
बासंती रंग और भी
निखर आया है...

कुछ बातें बोलने में अच्छी लगती हैं...
कुछ की बातें सुनने में अच्छी लगती हैं...
कुछ-कुछ बातें न बोलने में अच्छी लगती हैं
ना सुनने में
और कभी कुछ तो...
कही नहीं जातीं, सिर्फ़ सुनी जाती हैं
बस उन्हीं का अहसास...
उन्हीं की ख़ुशबू रह जाती है

बाक़ी सारे बोल हवा ले जायेगी...
पीछे वही रह जायेगा
जो कहा न गया, सिर्फ गहा गया
ना जाने कैसे अपना वजूद लिये
टिकी हैं
और ज़मीन से आसमाँ तक फैली हैं

तब से जब से...
सिर्फ़ पंछी बोलते थे...
दरख़्त सुनते थे...

तब से जब से
मीठे बोल फूटे नहीं थे...
समझदारी की समझ पनपी नहीं थी!

तुम चाँद न बन जाना
जिसे दूर से देख मुस्कुराऊँ मैं

तुम खुशबू न बन जाना
सिर्फ़ अहसास काफ़ी नहीं है मेरे लिए

तुम खुदा न बन जाना
जिसकी इबादत में गर्दन पड़े झुकाना
तुम कोई मसीहा न बन जाना
जिसे हर कोई चाहे बुलाना
तुम कोई गीत न बन जाना
जिसे हर कोई चाहे गुनगुनाना

छत की खुली धूप के जैसे
रहो तुम मेरे मनमीत ऐसे
घर के कोने में रहें दो किताबें जैसे

तुम चाँद हो, खुशबू हो
मसीहा बनो या खुदा
मैंने अपनी जिल्द में
छुपा लिया है
तुम्हारी धूप का हर कोना।

खुद अपनी आवाज़
सुनना चाहते हो तो
पहाड़ के किसी
दर्रे के पास जाकर चिल्लाओ
किसी कुँए में अपना
सिर डालकर
ज़ोर-ज़ोर से हल्ला मचाओ
या किसी कोने में जाकर
शान्त बैठ जाओ
तुम्हें अपनी आवाज़
खुद सुनायी देगी।

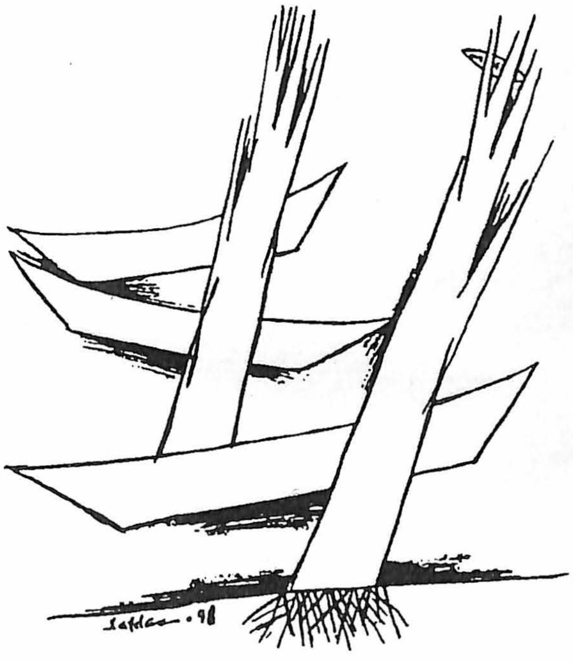

दुनिया के एक कोने में
तस्वीर बनायी तुमने
दूसरे कोने में
किसी ने रंग भर
दिये उसमें
ये कैसे हुआ
कि जो मैंने सोचा
वही विचारा तुमने भी
मेरी तरंगों को झकझोर
दिया किसने
किसने एक ताली दे दी
जिसने खोले सारे तिलिस्म
सपने में हमारे
बहा-कहा वही था
खुले आसमान और
हवाओं के बीच
कुछ विचार
कुछ कल्पनाएँ
कुछ चित्र, कुछ रंग
भरे पड़े हैं
बस, जो तोड़ लाये
उतनी उड़ान भर जाये
वो तो बस उसी के ये हो जायें।

काजर की कोठरी में कैसो ही सयानो जाये
एक लीक काजर की, लागी है पे लागी है

हाँ, जब भी लौटती हूँ एक काली लकीर रहती है उँगली पे

जिनसे ना सहमत हूँ
और ना ही जिनकी बातें मुझे सही लगती हैं
उनके नाम पर लगा आती हूँ स्याही
एक छोटा-सा निशान
जो धब्बे जैसा लगता है
मैं उस काग़ज़ के नीचे लिखना चाहती हूँ
कि इन सभी में से कोई भी नहीं है सुपात्र
फिर भी आऊँगी हर बार करूँगी इन्तजार

कि उस निशान को कोई शान से बदल दे
तिलक में, राह में, रोशनी में
मुस्कुराहट में, शक्ति में, समझदारी में।

तुम्हें हक़ है कि मुझे सताओ
तुम्हें हक़ है कि मुझे तड़पाओ
तुम्हारी वजह से मैं चीख़ी हूँ, चिल्लाई हूँ
रात-रात जागी हूँ, करवट भी न लेने पायी हूँ
तुम्हें हक़ है मेरे बच्चे
सिर्फ़ इसीलिए कि मैं तुम्हारी माँ हूँ ?

आँखों से बरसे धार-धार
अरमाँ, ज़िन्दगी, सपने हज़ार
मेरी सुबह, मेरी शामें
मेरी हर फरियादें

मेरे आँचल को भर गयी हैं
तेरी झिड़कियाँ, तेरे उलहाने
तेरा हमेशा दूर-दूर जाकर
फिर से पास आना
फिर-फिर लौट जाना

तिल-तिल कर सहा है
अन्दर-ही-अन्दर अंजुमन बहा है

अभी भी बहुत कुछ रहा है
इसीलिए...
फिर-फिर पुकारा और कहा है
हाँ, बच्चे तुझे हक़ है
...
मैं तेरी माँ जो हूँ।

हर रंग में रँगी हूँ
फिर भी
दीवार पे लगी हूँ
खूटी से टँगी हूँ

दियों का त्योहार और जगमगाता पूरा घर-संसार
फिर भी इस घरवालों की शक्लें आज भी स्याह क्यूँ हैं?

खुली धूप में वादों के साथ इरादों के साथ पेश की गयी है
फिर भी इस कुर्सी की लकड़ी सीली-सीली-सी क्यूँ है?

फलों के पेड़ और खुशबुओं से महकता रहता है घर
फिर भी टूटते हैं पके जामुन जब पत्तों और डालियों के संग
दुखता क्यूँ है माँ का सिर?

जीवन का हर अंक वहीं समाप्त हो जाता है
जब वो अपने अंक से लगा लेता है हमें।

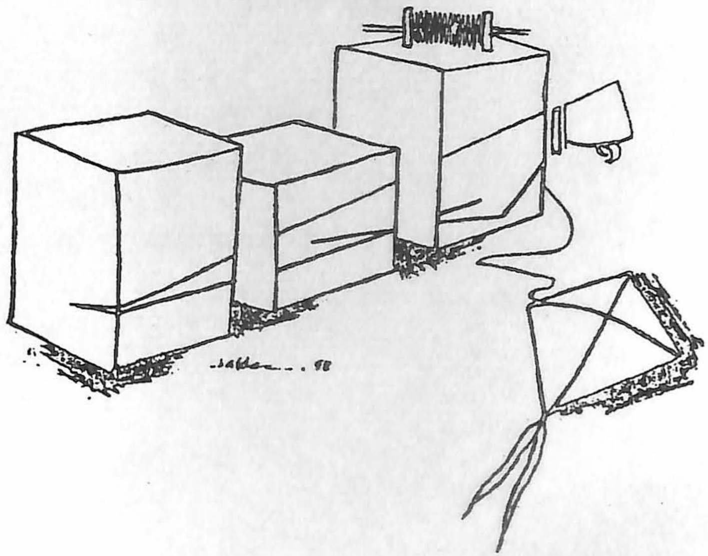

किसी को गले लगाया
किसी को सिर पर बिठाया
किसी को हाथ बढ़ाकर
फिसलने से बचाया
आँखों में भर ली
प्यार की रोशनी
ज़िन्दगी से कभी
न जी चुराया
ओ माँ टेरेसा
कोई भी नहीं तेरे-सा।

वो बड़ी गहरी नींद लेते हैं
उन्हें मत उठाओ
वो बड़ी मीठी नींद लेते हैं
उन्हें मत जगाओ
ये शहर बीमार हो रहा है
ये देश बीमार हो रहा है
दंगों का शोर उन्हें जगा नहीं पाया
दलों की होड़ उन्हें हिला नहीं पायी
'बड़े दरवाज़े' के पास सोये पड़े हैं
जनता इन विदूषकों से तंग आ गयी है
पर सहते रहना उनकी मजबूरी है
सारे दरवाज़े बन्द हैं
हम नाटक देखने को बाध्य हैं
अब तो आईए, इन सबको रोकिए
पर क्या करें
वो बड़े व्यस्त हैं
वो बड़ी गहरी नींद लेते हैं
'बड़े-दरवाजे' के पास
औंधे पड़े हैं
वो बड़ी मीठी नींद लेते हैं ।

परिस्थितियाँ

(1)

सीता

माँ, पहले भी तुम से कहा
जो कुछ भी मैंने सहा,
कई दफ़े माँगा
आसरा तेरी गोद का
पर आज तो अति हो गयी
और तू फटी
मुझे फिर गति मिल गयी।

(2)

शकुन्तला

ये मृगनयन
ये कंचनदेह
बदली जैसे
मुख पर केश सघन
हृदय में बसा
एक प्रेम तुम्हारा
गोद में बेटा भरत हमारा
हा, दुष्यन्त!
रहा मुझे फिर भी एक मुद्रिका
राज-चिह्न का सहारा।

(3)

मैंने तुझे क्या नहीं दिया
फिर भी मेरी इस देह को
तेरे उस पत्थर ने मीरा
सुख क्यों नहीं लेने दिया?

(4)

सारी दुनिया को करता प्रकाशमान मैं किन्तु
तुम तक न पहुँचा पाता एक किरण भी...
बीच में छाया है घना अन्धकार
उस अपराध का
जो किया हमने अपने प्यारे पुत्र के संग।

(5)

हाँ, ये सच है
आँखों पर पट्टी बाँधकर ही
अपने पति को देख पायी मैं
किन्तु विवाह-पूर्व
किसने बाँधी पट्टी
मेरी परिस्थितियों पर।

मैं तो भरा था अपने भावों से
बालपन से सीखी, मात्र युद्ध की भाषा
संगीत हथियारों की टंकार में पाया मैंने
जीवन युद्ध को किया समर्पित मैंने
हो जाएँ उनके सपने साकार
जिन्होंने दिया जन्मभूमि को आकार
आज युद्ध की समाप्ति में
मुझे वो सब-कुछ दिखता है
जो कर्त्तव्य के झूठे कोहरे से छुपा था
परिजनों, वीरों-पराक्रमियों की
असमय मौत
क्यों? किसलिए?
भला किसका हुआ इससे?
आश्चर्य है जो युद्ध से
पहले ये सब-कुछ जानते थे
उनका हृदय तनिक भी ना काँपा
जो हथियार छोड़, एक ओर हो गये
उन्हें भी धर्मयुद्ध के नाम पे बाँटा...

बुराई पर अच्छाई की ये
कैसी विजय रही
जिसमें बुराई की हार हुई
किन्तु अच्छाई की जीत नहीं।

ता

हर आदमी अपने में स्वतन्त्र है
फिर हम क्यूँ देश की सीमाओं में बन्द हैं
अगली शताब्दी के अन्त तक
या तो लोग दुखी या हैरान होंगे
कि क्यूँ सदियों तक
ज़मीन के टुकड़ों के लिए
होती थी लड़ाई
या फिर
खुद टुकड़ा-टुकड़ा बिखर जायेंगे।

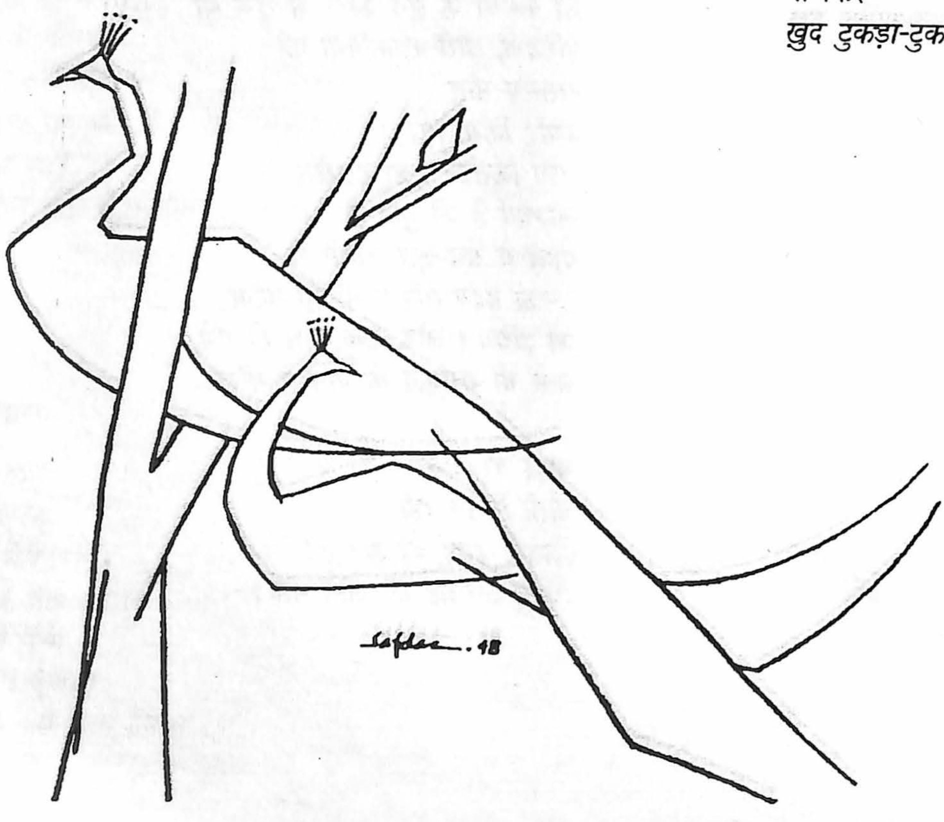

धरती चीरकर समा गयी जानकी
पवनसुत ने उँगली पे उठा लिया परबत
रावण था दशमुख, दस-बुद्धि लिये
बाणों की सेज पर सोये पितामह वज्रवत्
तरह-तरह के रूप धरे शिव-पार्वती ने
चूहे की सवारी और घूमा पूरा विश्व गणेश ने
आकाश में घूमते-फिरते थे उड़नखटोले
क्या ये सब कोरी कल्पनाएँ हैं?
हैं तो क्या रूप है
यदि सच हैं तो अद्भुत अनूप हैं
क्या मानव के पास, सचमुच इतनी शक्ति थी?
या आज भी वैसी शक्ति है
कहीं दबी-छिपी पड़ी है...
आज आकाश में
'उड़नखटोले' भ्रमण करते हैं
पर क्या किसी नारी में है जानकी की शक्ति?
किसी पुरुष में रावण की समझ या पवनसुत का बल
हाँ, ये सम्भव ना लगे, असम्भव भी तो नहीं
शायद
शिव-पार्वती रूप बदल ढूँढ निकालेंगे
विश्व चातक-चातकी बन स्वाति बूँद की जोहता है बाँट।

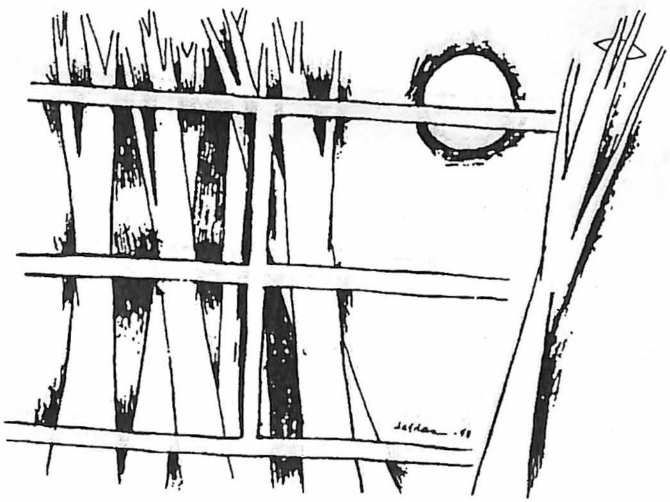

पिया को कुछ वादे पूरे करने थे
वो राह जोहती करती है प्रतीक्षा
चंद खिलौने घर आने थे
दूर के गाँवों में रोशनियाँ पहुँचनी थीं
कुछ तस्वीरों में भरे नहीं थे रंग
थमे नहीं थे महात्मा के प्रवचन

हवा थोड़ा और घूमना चाहती थी
मिट्टी थोड़ा और महकना चाहती थी
पंछी कुछ देर और चहचहाना चाहते थे
एक बच्चे की पतंग की डोर अभी बँधी नहीं थी
कुम्हार का चक्का अभी थमा नहीं था
और नेतरोदामस् की भविष्यवाणी फेल हो गयी...

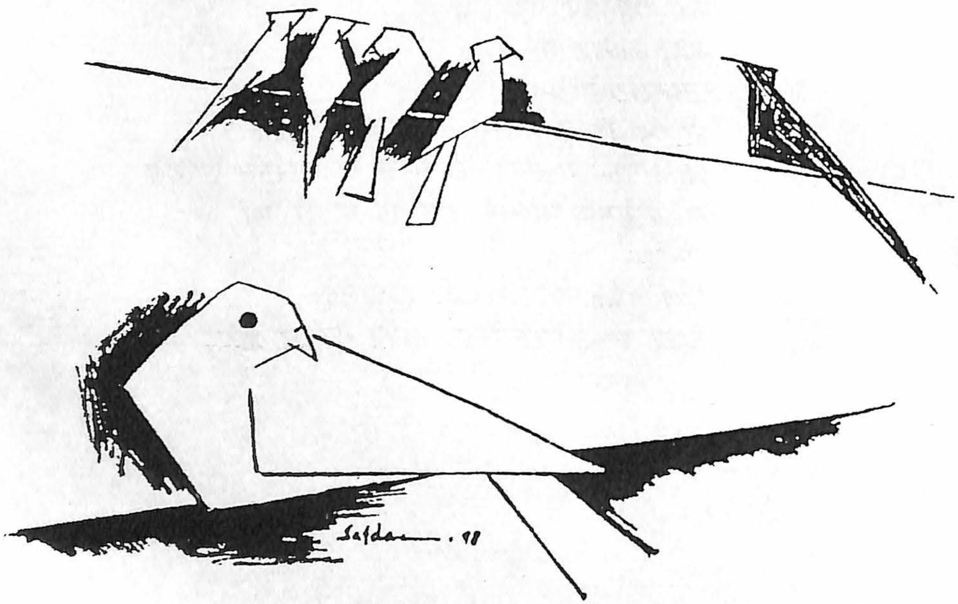

शुक्रगुज़ार हूँ

प्यारे पप्पा, मम्मी और क़मर मामू....
सिर्फ़ नेहा होती तो क्या होती?
शुक्र है नेहा शरद हूँ।

सफ़दर शामी और अफ़ज़ल साब, हिन्दुस्तान के बेहतरीन
कलाकार जिन्होंने मेरी किताब के लिए
ख़ूबसूरत स्केच और पेंटिंग दीं।

और बशीर साब आप तो....
शुक्रिया....शुक्रिया....शुक्रिया....
क्या कहूँ....कैसे कहूँ....

□□□

...ian Institute of ...d Study
ACC NO. 102589
DATE 6-12-2001
SHIMLA

ता

I. I. A. S. LIBRARY

Acc. No.

This book was issued from the library on the date last stamped. It is due back within one month of its date of issue, if not recalled earlier.

एक ख़जाने को मैंने
सड़क पर घूमते देखा है
कभी गाड़ी साफ करता
कभी फूल बेचता,
कभी लड़ता और झूठ बोलता
अपने छोटे से मुँह से
बड़ी सी गाली की
जुगाली करता
नंगे पाँव
उसे अक्सर देखा है मैंने
जब भी भटकती फिरती हूँ
सड़कों पर...
एक ख़जाने को मैंने..........

नेहा शरद

नेहा शरद